डा. परमानन्द शास्त्री के साहित्य में राष्ट्रीय भावना

डा० राका शर्मा, रीडर, संस्कृत–विभाग, एन के.बी.एमजी कॉलेज, चंदौसी

संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना के लेखक डा० हरिनारायण दीक्षित ने राष्ट्रीय भावना के स्वरूप की व्याख्या करते हुए लिखा है– अपने राष्ट्र की भूमि, जनसमूह, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, धर्म, साहित्य, कला, राजनीति, जीवनदर्शन आदि के प्रति लोगों के मन में गरिमा एवं महिमा का नैसर्गिक स्वाभिमान हुआ करता है, उसे ही हम राष्ट्रीय भावना की संज्ञा देते हैं। यही वह भावना है जिसके वशीभूत होकर लोग अपने राष्ट्र के लिए अपना सर्वस्व भी न्यौछावर कर देते हैं।(1) राष्ट्रीय भावना और अन्तर्राष्ट्रीय भावना के सामंजस्य को रेखांकित करते डा. दीक्षित लिखते हैं– शुद्ध राष्ट्रीय भावना लोगों में जहाँ अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए आत्मबलिदान तक की प्रेरणा देती है, वहाँ वह किसी अन्य राष्ट्र का अपमान करने की प्रेरणा स्वप्न में भी नहीं देती । वह तो जियो और जीने दो, फूलो फलो, फूलने–फलने दो की 'अन्तर्राष्ट्रीय भावना' की पोषिका होती है। क्योंकि वह अपनी रक्षा करना सिखाती है न कि दूसरों पर आक्रमण करना। उसमें स्वाभिमान होता है, न कि अभिमान। वह न तो किसी अन्य राष्ट्र का अपमान करती है और न अपना अपमान सहन करती है। इस प्रकार की शुद्ध राष्ट्रीय भावना अन्तर्राष्ट्रीय भावना की पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर देती है। हमारे भारतवर्ष में अभिव्याप्त राष्ट्रीय भावना ऐसी ही शुद्ध 'राष्ट्रीय भावना है'।(2)

जिन साहित्यकारों के हृदय में अपने राष्ट्र के प्रति गौरव होता है, प्रेम होता है, भक्ति होती है, उसकी उत्तरोत्तर उन्नति की आकांक्षा होती है और उसकी रक्षा करने के लिए आत्मबलिदान तक भी करने की अदम्य इच्छा बसती है, उनके साहित्य में अवश्य ही कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में, राष्ट्रीय भावना अभिव्यक्त हो उठती है।(3)

राष्ट्रीय भावना के विविध स्वरुप परमानन्द शास्त्री की रचनाओं में हमे प्राप्त होते हैं। भारत देश का गौरव गान उन्होंने बड़ी तल्लीनता और श्रद्धा के साथ किया है। उन्हें अपने देश की भूमि, पर्वत, नदियाँ और प्राकृतिक सुषमा बहुत आकृष्ट करती है। प्रातः काल सूर्य की किरणों से सुनहरी कान्ति को धारण करने वाला हिमालय जिसके सिर पर मुकुट की भाँति सुशोभित होता है और पैरों मे पड़ा हुआ समुद्र जिस पर मोतियों की वर्षा करता है, ऐसा अद्‌भुत शोभा से सम्पन्न भारत देश कवि को आह्लादित करता है।(4) गंगायमुना का संगम जहाँ पृथ्वीरूपी वधू के वक्षस्थल पर नीलमणियों से युक्त मोतियों के हार के समान दिखायी पड़ता है–

धारा श्यामलवर्णसूर्यदुहितुगंगासमानान्तरा
क्राम्यन्त्या क्रमशोऽभिगम्य मिलिता तस्याः सितस्त्रोतसा ।
मर्मज्ञैः कविकर्मणां क्षितिवधूवक्षोगतोत्प्रेक्ष्यते
सार्धांशे रचितातिनीलमणिभिर्मुक्ताफलैकावली।।(5)

यहाँ के खग–मृग लोगों के प्रेमपात्र, वृक्ष और लताएँ बन्धुतुल्य बने हुए हैं। यहाँ पत्थर, वन, स्थल, नदी और समुद्रों में विश्वास के आधार पर देवत्व प्रतिष्ठित कर दिया गया है। भोग त्यागमय हैं। माता–पिता, अतिथि को देवता माना जाता है। जैसा करोगे वैसा ही फल प्राप्त होगा ऐसे सरल विचारों से युक्त जहाँ जीवन का प्रवाह है।(6)

यहाँ की सांस्कृतिक समृद्धि दिव्य है। यहाँ भारतभूमि पर पग–पग पर देवताओं का वास है। सहिष्णुता की सीमा तो यह है कि साँपों को भी दूध पिलाया जाता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' का आदर्श विदेशियों का अभिनन्दन करता है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु 'निरामयाः' की कामना प्रतिदिन की जाती है।(7)

पुष्प, औषध, कन्दमूल, वृक्षों, झाड़ियों से युक्त वन्यसम्पदा एवं वासन्ती रमणीयता के रूप में कवि को प्रत्यक्ष वनदेवी दिखायी देती है। समस्त ऋतुएँ यहाँ अपनी सुषमा बिखेरती है। यहां की पशुम्पति यहाँ के वनों की शोभा को बढ़ाते हैं। यहाँ की खनिज सम्पदा अपरिमेय है। प्राकृतिक सुषमा के रूप में ऊपर से और खनिज सम्पत्ति के रूप में नीचे से लक्ष्मी हमारे देश का सेवन करती है।(8)

कवि का हृदय क्रन्दन कर उठता है कि इतनी सुंदर प्राकृतिक सुषमा का मनुष्य, स्वार्थ से अंधा होकर क्रूरतापूर्वक संहार कर रहा है। वह वृक्षों लताओं को निर्मम होकर काट रहा है। इस कारण ऊपर आकाश रो रहा है और नीचे पृथ्वी निष्प्राण होकर पड़ी है।(9)

स्वच्छ, निर्मल पवित्र गंगा का जल तो मनुष्य प्राप्त कर लेता है किंतु उसमें कीचड़ से भरा हुआ दुर्गन्धपूर्ण जल मिलाता रहता है।(10)

यहाँ सारे धर्मों के लोग हिल–मिल कर रहते है और सब अपने–अपने उत्सव समारोहपूर्वक मनाते हैं–

ओनम् – पोंगल – ईद– होलि – दशमी – दीपालि–पूजैक्समम्
गाँधी, नानक, वीर बुद्धिदिवसा गोविन्दयोर्जन्मनी ।
वैशाखी च समेऽपि भारतभुवः पर्वोत्सता राष्ट्रिया
स्तत्सर्वोपरि लोकतन्त्रटिवसः स्वातन्त्र्यपर्वानुगः।।(11)

अनेक भाषाएँ यहाँ भारत माता के वाद्य–यन्त्र के समान संगति करती हुई प्रतीत होती है। विभिन्न वेष–भूषाएँ, जातियाँ आन्तरिक एकता के सूत्र से रत्नावली की भांति इसे जोड़े हुए हैं।(12)

'जन–गण–मन' का गान विश्व में हमारी प्रतिष्ठा बढाता है। यह हमारा है और हम इसके हैं। अपने प्राणपन से सब इसके रक्षक हैं। यदि कोई तक्षक बनकर हमारे ऊपर फन तानता है तो उसका प्रतीकार करने के लिए हम जनमेजय के समान हैं। हम शत्रुत्व से बढ़ाए हाथ को तोड़ने में समर्थ हैं परन्तु मित्रता के बन्धन को सादर नमन करते है। कवि इसी भाव के संपोषक हैं।(13) कवि आकाश (स्वर्ग) से भी अधिक अपनी पृथ्वीसे प्रेम करता है। कवि को भारत की धूलि, कपूर के चूर्ण से भी अच्छी लगती है और यहाँ की मिट्टी मलयचन्दन से भी उत्कृष्ट लगती है–

अतिशेते धूलिर्धनसारं यस्य मृत्तिका मलयचन्दनम्
जयति भारतं यत्र निवसति प्रतिपद्मेकं पृथङ्नन्दनम्।
मुकुटायते गिरिर्देवात्मा शोभां मूर्धनि यस्यवर्धयन्,
चरणनिपतितो भाति पयोधी रत्नोद्गारमपारमर्पयन्
नीलरत्नमाला कालिन्दी गंगा–धारा मौक्तिकहारः,
उपहारं नवपुष्पफलानां दत्ते प्रमुदित त्रृतुसंहारः।(14)

कवि को अपने राष्ट्रभक्तों के प्रति बहुत आदरभाव है। यह भारतभूमि भगतसिंह, राजगुरु, चन्द्रशेखर जैसे देशभक्तों के प्राणों का सार है। इसमें योजन से योजन तक चलने वाले पं. जवाहरलाल नेहरू की चिता की भस्म मिली हुई है। इसकी मिट्टी में महात्मा गाँधी और इन्दिरा गाँधी का खून मिला हुआ है, जिसका का कण–कण बलिदानो की कथा से मुखरित है, इससे बढकर और कोई पवित्र वस्तु नहीं है। जिसको हम प्रणाम करें। इसी मिट्टी में सुभाष चन्द्र बोस उत्पन्न हुए थे, जिनकी मृत्यु का आज भी कृतज्ञ देशवासियों को विश्वास नहीं होता।(15)

यहाँ के देशभक्तों को न जेल के कोडे. न प्यास, न बर्फ की सिल्लियों पर लिटाना, न नाखूनों में सुई को चुभाना और न ही फाँसी पर चढ़ाना ही भयभीत कर सका। क्रान्तिकारी होने ने के साथ ही गाँधी जी के अहिंसा व्रत के उपासक भी थे।

राष्ट्र की उन्नति सभी की सहभागिता से होती है। इसीलिए कवि अच्छे नागरिकों एवं मनुष्यों का निर्माण करना चाहता है। वह मनुष्या को आत्मालोचन करने के लिए प्रेरित करता है।(16)

देश के नवनिर्माण और रूढ़ियों की उपेक्षा के प्रति आग्रहशील होते हुए कवि दूसरों के कहने से अपनी पुरानी परम्पराओ की उपेक्षा के पक्ष मे नहीं है। 'तुलसी पादप आँगन स्थितः'– गीत के माध्यम से कवि ने इसी भाव को व्यक्त किया है।(17) इसी भाव को उन्होंने इस प्रकार कहा कि पुराने लोगो ने जीवन का ये लम्बामार्ग बड़े प्रयास से सुस्थिर किया है। जिसके दोनों ओर यू घने वृक्ष लोगों को शीतलता प्रदान करते हैं। लम्बे–पतले आकाश को छूने वाले, थोड़े पत्तो वाले जो वृक्ष इस समय लगाए जा रहे है वे जनता को सुख–शान्ति देने मे कितने समर्थ हो सकेंगे।(18)

कवि पुरानी अच्छी मान्यताओं को राष्ट्र के कल्याण हेतु मानते है। वे एक ऐसे सुदृढ़ राष्ट्र की कल्पना करते हैं जिसमें मानव के द्वारा मानव का शोषण न हो। आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार के स्वास्थ्य का पोषण हो, व्यक्ति को

अपने गुणों के आधार पर आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त हो कोई किसी पर दोषारोपण न करे । भारतीय स्वतन्त्रता सरक्षित रहे।(19)

शास्त्री जी राष्ट्र के गौरव और देशभक्ति के गायक कवि हैं परन्तु उसकी कुरीतियों एवं अनीतियों के वे मुखर आलोचक हैं। इसी कारण उन्होंने तीखी आलोचना की है । भारत की वर्तमान दुर्दशा का चित्र उनके 'एते विदूषकाः' फले स्वाम्याधिकारिणः गीत में दिखायी देता है।(20)

कवि को जनता की शक्ति में अटूट विश्वास है। वे जनता को राष्ट्र की आत्मा मानते हैं। वे लोकतंत्र के सच्चे उपासक है और उसी की प्रभुसत्ता में विश्वास रखते हैं और अन्याय को नष्ट करने के लिए क्रांति की चिंगारी से निकले हुए प्रतिभा विवेक की विजय आशंसना करते हैं।(21)

आजके मानव की दुःस्थिति और विवशता पर उनकी चिन्ता सहज भाव से फूट पडती है। मनुष्य ऊपर उड़ रहा है परन्तु उसकी गति नीचे को ओर जा रही है। आधुनिक सभ्यता ने मनुष्य को मशीन बना दिया है। भीड तो सर्वत्र है किंतु मनुष्यता का अभाव है। आधुनिक सभ्यता का ऐसा बाण लगा है कि भोलाभाला जीवनमृग मारा जा रहा है। किसको उपालम्भ दें, कुएँ में ही भाग पड़ी है। आनन्द आकाशकसुम हो गया है। वाणी चुप है । हृदय भीतर ही भीतर घुट रहा है।(22)

मानव से मानव की जो भय उत्पन्न हुआ है, उसके विषय में क्या कहें। शीशे के सामने खड़े होने का साहस भी हममें नहीं रहा है। यह कैसा घर हमने बनाया है जिसमे कोई झरोखा है, न दरवाजा है केवल दीवारों की सुन्दरता है–

मानवाद यद्भयमुपेतं तस्य किं ब्रूमः सखे!
दर्पणस्याग्रे स्वयं न स्थातुमस्ति समर्थता,
कीदृगस्माभिर्न जाने गेहमेतन्निर्मितम्,
नो गवाक्षः द्वारमपि नो, भित्तिभूमा भव्यता।(23)

यहाँ की स्थापत्यकला, मूर्तिकला पर कवि को गर्व है। मूर्तिकला अपने सौन्दर्यसार से विलक्षण है जो वैदेशिकों को अपनी ओर आकृष्ट करती है और तस्करों से प्राप्त मूर्तियों को वे लाखो, करोड़ो मुद्राओं में खरीद लेते है। यहां के कलाकारों ने पत्थरों को तराश कर अजन्ता एलोरा की गुफाओं में ऐसे रंगों का प्रयोग किया है जिनका वैचित्र्य न कवियों के द्वारा वर्णित किया जा सकता है और न सूर्य की हजारों किरणों के द्वारा जिसे छुआ जा सकता है।(24)

संसार मे सबसे पहले गणित का प्रादुर्भाव यहीं हुआ। बाद मे अरब विद्वान् उसे अपने यहाँ ले गये। आज भी वहाँ के लोग अंकों की हिन्द से पहुंचने के कारण 'हिन्दसा' कहते हैं। विज्ञान की प्रतिभा का प्रमाण देने में निपुण ऐसा भारतवर्ष है।(25)

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' का घोष यहीं से प्रारम्भ हुआ था। यहाँ की भूमि पार्वती, सीता, द्रौपदी, मैत्रेयी, गार्गी, भारती, अपाला, सावित्री जैसी विदुषियों से सुशोभित है।(26)

कवि हिन्दू, बौद्ध, क्रिश्चियन, मुस्लिम और सिखों को पञ्चभूतों के समान मानता है जो कि मिलकर समाज के शरीर को बनाते हैं और इनका पारस्परिक सौहार्द ही उस शरीर में आत्मा का काम करता हैं।(27)

भारत की क्षेत्रगत विभिन्नताओं से, जीवन पद्धतियों से भारतवर्ष एक रंग–बिरंगे पुष्पों के उद्यान के समान प्रतीत होता है।(28)

इस देश की पारिवारिक पद्धति अत्यन्त उत्कृष्ट है। यहां के कुटुम्बों में वृद्धों को आदर, बच्चों को स्नेह, स्त्रियों को करुणा तथा पुरुषों को ममत्व प्राप्त होता हैं।(29)

दाम्पत्य प्रेम अनुपम है जो प्रीति और प्रतीति के अधीन है। पारस्परिक कलह हो जाने पर भी प्रेम से पुष्ट रहता है। विपत्ति, बुढ़ापे से, न विदेश गमन से नष्ट होता है अपितु जन्म जन्मान्तर तक का साथ निभाने वाला होता है।(30)

राष्ट्र की सुरक्षा की चिन्ता कवि को उद्वेलित करती है। एक ओर यहाँ के शासनपक्ष के नेताओं की उद्धतता उसे पीड़ित करती है तो दूसरी ओर विपक्षी नेताओ की भूमिका भी कवि की आलोचना को प्राप्त करती है। वह उन्हें परामर्श देते हुए कहता है कि तुम विध्वंस वृत्ति छोडकर राष्ट्र के लिए पारस्परिक सहयोग की नीति अपनाओ।(31) जंगली भैसों की तरह तुम्हारे लड़ने से केवल प्रजा को ही हानि होती हैं।–

अकारण युध्यथ भूरियूयं
यदा हि वन्या महिषा इवात्र ।
जानीथ का हानिरहो जनानां
प्रगुल्पकानामिव जायते यत् □

मंत्री लोगो की भाषणपटुता न जनता का कल्याण कर सकती है और न विदूषकता । श्रेष्ठ व्यक्ति सोच समझकर ही बोला करते हैं। कभी भी आसुरी वाणी का प्रयोग नही करते। मंत्रीगण भिन्न स्वरों में और विभिन्न रंगों में बोलते हुए जनता को उद्विग्न करते हैं।(33)

कवि जनता के माध्यम से ऐसे नेताओं को सामने करते हुए कहता है कि चंचलता छोड़ो, व्यर्थ की भाषणबाजी बंद करो, तराजू में रख हुए मेंढको की भाँति उछल–कूद बंद करो। विनयपूर्वक जनता की सेवा करो–

अलं चलत्वेन गिरामलं च
तुलास्थ मण्डूक – निभ – क्रमेण।
संगम्य सेव्यो विनयेन लोकः
परीक्षकः पश्याति गूढ़दृष्टिः ।। (34)

कवि के मत मे जनता ही राज्य, राष्ट्र, सबकुछ है। (35) वे भारत की जनता की विपत्तियों का कारण शक्ति और पद के प्रभाव में लगे हुए सत्तालोलुप मंत्रियों, उनकी छाया बने अधिकारियों व्यापारियों और चुपचाप देखते हुए सब सहन करते हुए बुद्धिजीवियों को मानते हैं।

कवि प्रान्तीयता, सम्प्रदाय और वाद को छोड़कर भारतीय भावना के उपासक है।(36)

कवि अपनी देश की एकता एवं अखण्डता के प्रति पूर्ण आश्वस्त है। उसका मानना है कि पारस्परिक कलह के कारण किसी को भी हमारी एकता पर सन्देह नहीं करना चाहिए, हवा के चलने पर क्या वृक्षों के पत्ते नहीं हिलते ? किंतु जब बाहर से आक्रमण होता है तो मेरा देश अलग–अलग उँगलियों के भेद को छोड़कर बँधी हुई मुट्ठी के समान हो जाता है।(37)

कवि काँ कहना है कि हमारा धर्म, जाति, राष्ट्रीयता 'भारतीय' हो । हमारा राष्ट्र घोष 'एकता' हो तथा हमारा मन्त्र जयतु भारतम हो–

धर्म एकोऽस्मदीयस्तु भारतीयता
जातिरेका तथैवास्ते राष्ट्रियता।
राष्ट्रघोषोऽस्मदीयः सदैवेकता
मन्त्रएकोऽस्मदीयो जयतु भारतम्।
देश एकोऽस्ति नः केवलं भारतम् (38)

राष्ट्रभक्ति का इससे बड़ा और बढ़िया उदाहरण क्या हो सकता है–

तनूरस्मदीयास्ति यद्भारतस्य,
तथा सन्ति प्राणा इमे भारतस्य।
अभिन्नो यदात्याश्रयो भारतस्य
अभिन्नामिथः स्मो वयं भारतीयाः
वयं भारतीयाः, वयं भारतीयाः। 39

संदर्भ ग्रन्थ–

1. संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना, डा. हरिनारायण दीक्षित, पृ. 27
2. संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना,पृ० 29
3. संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना,पृ० 45–47
4. भारतशतकम्: 7
5. भारतशतकम्:14
6. स्वरभारती पृ.14
7. स्वरभारती पृ.14
8. भारतशतकम्16–28
9. परमानन्द सूक्तिशतकम्: 89
10. गन्धदूतम्: पूर्वगन्धः 64
11. भारतशतकम् 26
12. भारतशतकम 31,36
13. स्वरभारती पृ.14
14. स्वरभारती पृ.14
15. स्वरभारती पृ.14
16. जनविजयम् 15/16–30 भारतशतकम् 66
17. स्वरभारतीः पृ.45
18. परमानन्द सूक्तिशतकम् 43
19. स्वरभारतीः भारती स्वतंत्रताः पृ.13
20. स्वरभारतीः पृ.105
21. जनविजयम् 15/58
22. भारतशतकम्:109, स्वरभारतीः पतिता कूपेऽत्र विजया विद्यतेः पृ. 106
23. स्वरभारतीः नाभवत् प्रागुपवनेऽस्मिन् पृ.109
24. भारतशतकम् 46,47
25. भारतशतकम् 42
26. भारतशतकम् 73
27. भारतशतकम् 35
28. भारतशतकम् 38
29. भारतशतकम् 68–71
30. भारतशतकम् 72, परमानन्दसूक्ति शतकम्: 20
31. जनविजयम् 15/29–32
32. जनविजयम् 33
33. जनविजयम् 48
34. जनविजयम् 49
35. जनविजयम् 55
36. परमानन्द सूक्तिशतकम्: 98
37. भारतशतकम् 35
38. स्वरभारतीः देशः एकोऽसि नः केवलं भारतम्: पृ. 17
39. स्वरभारती वयं भारतीयाः पृ.16